International Journal of Sanskrit Research 2024; 10(6): 85-88

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2024; 10(6): 85-88
© 2024 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 12-09-2024
Accepted: 16-10-2024

सुमन राय
पीएचडी शोधार्थी, दिल्ली विश्व विद्यालय, संस्कृत विभाग, दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
सुमन राय
पीएचडी शोधार्थी, दिल्ली विश्व विद्यालय, संस्कृत विभाग, दिल्ली, भारत

वैदिक साहित्य में स्त्रियों की अवधारणाएं

सुमन राय

प्रस्तावना

वैदिक साहित्य कालीन समाज-व्यवस्था में स्त्रियों को अत्यन्त गरिमामय और गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त था। अतः तत्कालीन वैदिक ऋषियों ने स्त्रियों को 'ब्रह्मा' शब्द से अभिहित किया है। जिस प्रकार ब्रह्मा समग्र ज्ञान के अधिष्ठाता है एवं वे ही वैदिक यज्ञों के सर्वोच्च स्थान में प्रतिष्ठित होकर समग्र यज्ञ का सञ्चालन करते हैं, उसी प्रकार स्त्रियाँ भी समाज के समस्त ज्ञान-विज्ञान का मूलाधार हैं।[1]

वैदिक साहित्य कालीन ऋषियों ने स्त्रियों की गौरवान्वित महत्ता को देखते हुए स्त्रियों को जननी, कन्या, पत्नी, ज्ञानदात्री, भ्रातृ, सेना नायक और शत्रु संहारक अर्थात् स्वतन्त्रा सेनानी आदि विविध रूप में परिभाषित किया है।

कन्या के रूप में स्त्रियों का वर्णन

यह सम्पूर्ण विश्व स्त्रियों के विना सारशून्य है। क्योंकि वंश-परम्परा की दृष्टि से निस्सन्देह समाज में पुरुषों की अपेक्षा सर्वाधिक महत्त्व स्त्रियों को दी जाती है। समाज में स्त्रियों की इसी महत्त्व और आवश्यकता के कारण ही तत्कालीन ऋषियों ने दम्पती को इसकी कामना तथा पालन-पोषण का विधान किया है।

वैदिक साहित्य में स्त्रियों के विविध रूपों में विशिष्ट रूप 'कन्या' है। जिसका अभिप्राय है- 'सबके द्वारा वाञ्छनीय'।

यास्काचार्य ने निरुक्त-ग्रन्थ में कन्या को 'कन्या कमनीया भवति' अर्थात् 'सबके चाही जाने वाली' कहा है।[2]

स्त्री-पुरुष के शरीरांगों से कन्या का सृजन होने के कारण वैदिक साहित्य के अनेकशः स्थलों में कन्या को 'पुत्रवत् अर्थात् पुत्र समतुल्य' कहा है। क्योंकि ऋग्वैदिक कालीन पिता कदापि कन्याओं की उपेक्षा नही करता है। अपितु जिस प्रकार पिता पुत्रों के साथ सम्पूर्ण आयु व्यतीत करने के उपरान्त अलौकिक आनन्द और सुखानुभूति करता है,[3]

उसी प्रकार जब पुत्रियाँ अपने गृह में क्रीड़ा और किल-कारियाँ करती हैं। तब पिता का हृदय प्रसन्नता से प्रफुल्लित और आनन्दित होता है।[4] अतः वैदिक कालीन पिता दोनों में भेद-भाव नहीं करते हैं, अपितु समतुल्य मानते हैं।

वैदिक साहित्य कालीन समाज में कन्याओं का नाम शोभन उच्चारण वाला, सुन्दर अर्थवाला तथा विशिष्ठ गुणों वाला रखने का विधान था। अतः ऋग्वेद के अनुसार कन्याओं का नाम मनोहर तथा 'सुहवा' अर्थात् विशिष्ठ गुणों वाला होना चाहिए।[5] आश्वलायन गृह्यसूत्र में कन्याओं का नाम विषमाक्षर से कहा है।[6] उच्चारण सम्बन्धी काठिन्य के कारण आपस्तम्ब ने कन्याओं का नाम के अंतिम अक्षर र, ल, ना रखने कि विधान किया है।[7] पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार कन्याओं का नाम आकारान्त और तद्धितान्त के साथ-साथ विषमाक्षर में होना चाहिए।[8] इस प्रकार तत्कालीन समाज में कन्याओं का नाम श्री, भारती, कमला, विमला, सुमित्रा, रोहिणी, रेवती, अंगुरी, गंगा और यमुना आदि विशिष्ट गुणों से युक्त होते थे।

जननी के रूप में स्त्रियों का वर्णन

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से स्त्रियों की पूर्णता मातृत्व में निहित है। इसलिए वैदिक साहित्य में स्त्रियों को 'जननी या माता' कहा गया है। ऋग्वेद में जननी शब्द का पूरक रूप में 'मातर्, जनि, जनित्री, अम्बा, अम्बि तथा नना' शब्दों का प्रयोग हुआ है। सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से यह जननी ही सम्पूर्ण विश्व का विस्तार तथा सन्तान की उत्पत्ति काठिन्य का भार वहन करती है।

अतः वैदिक साहित्य में सन्तानोत्पत्ति संस्कारों का विधान करते हुए मनु ने कहा है कि पत्नी के गर्भाधान का समय ऋतु-स्नान के चौथी रात्रि से सोहलवीं रात्रि पर्यन्त सर्वोत्तम माना है।[9] यह गर्भाधान संस्कार पति और पत्नी के लिए केवलमात्र रात्रि में ही होना आवश्यक है। क्योंकि दिन में समागम क्रिया करने से पति और पत्नी के प्राणवायु में तेजी रहती है। जिसके परिणाम स्वरूप दुर्वल सन्तान उत्पन्न होती है।[10] अतः ऋषियों ने गर्भाधान का समय रात्रि में ही सर्वोत्तम माना है।

वैदिक साहित्य में जननी का सन्तान के प्रति कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्व का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि-

मनु के अनुसार सन्तान उत्पत्ति करना ही जननी का कर्तव्य नहीं है, अपितु सन्तानों का पालन-पोषण करके स्वनिर्भर बनाना भी जननी का ही उत्तरदायित्व है।[11] अतः जननी को सदैव ऐसा कार्य करना चाहिए, जिससे सन्तान के लिए कल्याण-कारक सिद्ध हो।[12] अथर्ववेद में जननी को 'पयोदीक्षा' कहा है। क्योंकि वह जननी ही पुत्र एवं पुत्री को अपने सात्त्विक दुग्ध का पान कराती है, तथा पुत्र एवं पुत्री को तेजस्वी और आनन्द से युक्त करती है।[13]

बाल्यावस्था में सन्तान अन्न की याचना सदैव अपनी जननी से करता है।[14] माँ इनके याचनाओं से प्रफुलित और आनन्दित होकर विविध प्रकार पकवान व्यजनों का आस्वादन कराती है तत्पश्चात् उनको नये –नये अलंकार और वस्त्रादि पहनाकर शृङ्गार करती है।[15] इस प्रकार से अपने सन्तानों को खिलाने-पिलाने, नहलाने और शृङ्गार आदि कर्तव्यों का पालन करते हुए, उन्हें विविध प्रकार घातक रोगों से दूर रखती है।[16]

पत्नी के रूप में स्त्रियों का वर्णन

वैदिक साहित्य में स्त्रियों के अनेक रूपों में पत्नी अन्यतम है। तत्कालीन समाज में हमें आज की भाँति विवाह संस्कार का प्रचलन दृष्टिगोचर होते हैं। इसके माध्यम से कन्या एवं बालक उभय पवित्र वैवाहिक सम्बन्ध में पति और पत्नी के रूप में आबद्ध होकर गृहस्थाश्रम या दाम्पत्य जीवन में प्रवेश करते हैं। तदुपरान्त स्त्रियाँ गृहस्थाश्रम के सभी कर्तव्यों एवं धर्मों का पालन करते हुए पत्नी के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है।

विवाह के उपरान्त अपने गृह में पत्नी का सर्वाधिक घनिष्ठ सम्बन्ध पति के साथ होता है। स्त्रियाँ पति के गृह की 'स्वामिनी' होती हैं। इसलिए उसे 'गृहपत्नी और सम्राज्ञी' भी कहते हैं।[17] उनका अपने सास, ससुर, देवर, ननदादि सभी सदस्यों पर प्रभुत्व होता है। इसलिए अथर्ववेद में पत्नी को 'धर्मपत्नी' कहा गया है।

तत्कालीन पत्नियाँ परिवार के उत्तरदायित्त्व को सुगमता से निर्वाह करते हुए सदैव अपने परिवार की कल्याण चाहने

वाली, कष्टों को नाश करने वाली एवं पति सास-ससुर आदि परिवार समूह के हितैषी होती हैं।[18] वे दोनों नित्य प्रतिदिन सूर्योदय से पूर्व शयन से उठकर तत्पश्चात् प्रातः काल में दोनों परस्पर प्रसन्नता पूर्व यज्ञ करते थे।[19] पत्नी हमेशा सास-ससुर आदि के प्रति सम्मान एवं आदरपूर्वक आचरण करते थे।[20] सोम अर्थात् सोम्यगुण पत्नियों को सौभाग्यवती बनाता है।[21] अतः पत्नियों के अन्तःकरण में दयाभाव, दानशीलता, पतिव्रता और विनम्रता आदि गुणों का समावेश होता है।

ज्ञानदात्री के रूप में स्त्रियों का वर्णन

केवल मात्र ज्ञान ही स्वयं समग्र शक्तियों का केन्द्र विन्दु है। क्योंकि सम्पूर्ण विश्व के सामाजिक, भौतिक, आध्यात्मिक, मानसिक, नैतिक और सार्वभौमिक का उत्थान, विज्ञान और आविष्कार ज्ञान के द्वारा ही होता है। यह ज्ञान मानवशरीर के अन्तःकरण में सूक्ष्म रूप से विद्यमान रहता है। जिससे ज्ञान मानव जीवन में नवीन ऊर्जा का संचार करता है, तथा मानवों को प्रभावशाली और शक्तिशाली बनने में प्रेरित करता है। अतः ज्ञान को मानवजीवन का 'प्रेरक और रक्षक' कहा जाता है।[22]

तत्कालीन विद्वत्समाज में ज्ञानदात्री एवं विदूषी स्त्रियों में गार्गी और मैत्रेयी आदि का नाम विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है।[23] क्योंकि समाज में केवलमात्र स्त्रियाँ ही अपने सन्तानों को विद्या, शिक्षा और ज्ञान देती हैं, तथा अपने सन्तानों को ज्ञानवान बनाती हैं। जिस प्रकार सभी ज्ञानों का आधार ब्रह्मा है, उसी प्रकार स्त्रियाँ भी परिवार के ज्ञान का मूल है। इसलिए ऋग्वेद में स्त्रियों का 'ब्रह्मा अर्थात् ज्ञानवती' कहा गया है।[24]

तत्कालीन विद्वत्समाज के उल्लेखनीय ज्ञानवती एवं विदुषी स्त्रियों में गार्गी और मैत्रेयी प्रमुख थे। इनमें गार्गी वचक्नु ऋषि की पुत्री थी। इसलिए उन्हें 'गार्गी वाचक्नवी' नाम से अभिहित किया गया है।[25] पितृ-परम्परा से ही ऋषि वचक्नु की पुत्री गार्गी विविध-शास्त्रों की ज्ञान से सम्पन्ना थी। अतः राजा जनक द्वारा आयोजित सर्वश्रेष्ठ विद्वज्जनों की सभा में इन्हें आमन्त्रित किया गया। जिसमें समस्त विद्वज्जनों में सर्वश्रेष्ठ विद्वान कौन है? यह जानना था।

इस सभा में उपस्थित विद्वज्जनों में याज्ञवल्क्य से गार्गी ने स्थूल जगत को व्याप्त करने वाले तत्त्व और अक्षर ब्रह्म विषयक प्रश्न पूँछे।[26] तदुपरान्त याज्ञवल्क्य द्वारा सभी प्रश्नों का सन्तोषप्रद उत्तर दिये जाने पर गार्गी ने उपस्थित सभी विद्वज्जनों में याज्ञवल्क्य को सर्वश्रेष्ठ विद्वान घोषित किया।[27] इससे हमें ज्ञात होता है कि विद्वज्जनों की सभा में ब्रह्म ज्ञान से ओत- प्रोत गार्गी से भिन्न दूसरा कोई नहीं था। अतः सभा में याज्ञवल्क्य की मौखिक परीक्षा लेने वाली परीक्षक बनीं। इससे प्रमाणित होता है तत्कालीन विद्वत्समाज में गार्गी परम ज्ञानी एवं वैदुष्य पूर्ण थीं।

स्वतन्त्रा सेनानी के रूप में स्त्रियों का वर्णन

वैदिक कालीन समाज में स्त्रियों को लज्जा और शील की शिक्षा के साथ-साथ युद्धादि विद्याओं की भी शिक्षा दी जाती थी। जिससे स्त्रियाँ अपने अन्तःकरण में कदापि हीन भावना का उदय न होने दे तथा वे स्त्रियाँ चारित्रिक एवं आत्मिक बल से स्वयं को सबला महसूस करें। अतः उनमें सेनानायक, शत्रु सेना का संहारक, अजेय, पराक्रमी, तेजस्विता और वीरांगना आदि गुणों का समावेश होते थे। स्त्रियों में शौर्यपूर्ण और तेजस्विता जैसे गुणों का होना अत्यावश्यक है। अतः तत्कालीन वैदिक ऋषि अथर्वा ने स्त्रियों को सशक्त बनाने के लिए युद्धादि शिक्षा का विधान किया है। जिससे स्त्रियाँ शिव के पिनाक धनुष के भाँति अस्त्र-शस्त्र को धारण करके शत्रुओं का नाश करते हुए आगे बढे। इससे वे स्त्रियाँ निर्भीक, मनोबल-युक्त, तेजस्विनी और ओजस्विनी आदि विशिष्ट गुणों से युक्त होते थे। अतः तत्कालीन स्त्रियों को 'क्षत्रियाणी' का प्रतीक माना जाता था।[28]

तत्कालीन वैदिक ऋषि 'अथर्वा' ने स्त्रियों को सशक्त और स्वतन्त्रा सेनानी बनाने के लिए युद्धादि शिक्षा का विधान किया है। जिससे स्त्रियाँ शिव के पिनाक नामक धनुष की भाँति अस्त्रशस्त्र को धारण करके शत्रुओं का नाश करते हुए आगे बढ़े।[29] इससे वे स्त्रियाँ निर्भीक, मनोबल-युक्त, तेजस्विनी और ओजस्विनी आदि विशिष्ट गुणों से युक्त रहती थी। इसलिए उन्हें तत्कालीन समाज में 'क्षत्राणी' का प्रतीक माना जाता था।

इसके उपरान्त तत्कालीन युद्धादि क्षेत्र में स्त्रियाँ सेना नायक एवं सेना-संहारक के रूप में प्रतिष्ठित थी। जिस प्रकार युद्ध में देवराज इन्द्र अपने सेना का नेतृत्व करते हुए सेनाओं को विजय दिलाता है, उसी प्रकार इन्द्राणी भी युद्ध में सेना का नेतृत्व करती थी। अर्थात् वैदिक काल में पुरुषों के भाँति स्त्रियाँ भी युद्ध में सेना का नेतृत्व करती थीं तथा युद्धादि क्षेत्र में अग्रगण्य रहते हुए शत्रुसेनाओं को निस्तेज और पराजित करते थे।[30]

उपसंहार

वैदिक साहित्य के अध्ययन से हमें यह ज्ञात होता है कि वैदिक साहित्य कालीन समाज में स्त्रियों को गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त था। तत्कालीन समाज में स्त्रियाँ कन्या, जननी, पत्नी, ज्ञानदात्री तथा स्वतन्त्रता संग्रामी आदि विविध रूपों में समाज के कल्याण हेतु अपने-अपने महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती थी। बाल्यावस्था में कन्या अपने स्नेह और बालक्रीड़ा के माध्यम से पिता को अलौकिक सुखानुभुति कराती थी, तथा वे पुत्रवत् पिता के समग्र कर्तव्य को दायित्व के साथ निर्वाह करती थी। कन्या के विवाह के पश्चात् पत्नी रूप में गृहस्थजीवन के समस्त कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का पालन करते हुए परिवार की समृद्धि करती थी, तथा परिवार का मूल आधार पत्नी होती थी। जननी रूप में तत्कालीन स्त्रियाँ अपने सन्तानों का पालन-पोषण करते हुए समाज में रहने योग्य आत्मनिर्भर बनाती थी। वे अध्ययन-अध्यापन के अतिरिक्त युद्धों में बढ़ चढ़कर भाग लेती थीं और निर्भीक, साहसी होकर युद्धों का नेतृत्व करती थी। इस प्रकार स्त्रियाँ समाज में स्नेहत्व, मातृत्व, ज्ञानत्व, सशक्तिकरण, निर्भीक और वीरता का अमिट छाप छोडती है। इससे 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' कथन की सार्थकता प्रतीत होती है।

संदर्भ सूची

1. स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ। ऋग्वेद-८.३३.१९
2. निरुक्त-४.२
3. पुत्रिणा ता कुमारिणा विश्वमायुर्व्यश्नुतः। उभा हिरण्यपेशसा। ऋग्वेद-८.३१.८
4. बल्हिनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य। इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः। ऋग्वेद-६.७५.५
5. ऋग्वेद-२.३२.४
6. अयुजानि स्त्रीणाम्। आश्वलायन गृह्यसूत्र-१.१५.१.१०.६
7. सर्वाश्च रेफलकारान्तवर्णाः विवर्जयेत्। वीरमित्रोदय संस्कारप्रकाश से उद्धृत।
8. अयुजाक्षरमाकारान्तं स्त्रियै तद्धितम्। पारस्कर गृह्यसूत्र-१.१७.१४.४
9. ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः।
   चतुर्भिरितरैः सार्धमहोभिः सद्विगर्हितैः। मनु-३.४३
10. प्राणा वा एते स्कन्दति ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते। प्रश्नोपनिषद्-१.१३
11. उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम्।
    प्रत्यहं नोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्री निबन्धनम्॥ मनु-९.२
12. इह प्रियं प्रजायै ते समृध्यताम्। अथर्ववेद-१४.१.२१
13. अथर्ववेद-१४.२.५७
14. ऋग्वेद-१.१५२.६
15. ऋग्वेद-७.२.५
16. अथर्ववेद-१४.२.६२
17. सम्राज्ञी श्वशुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्वां भव।
    ननान्दरि सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी अधि देवृषु॥
    ऋग्वेद-१०.८५.४६ तथा अथर्ववेद-१४.१.४४
18. सुमंगली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये०। अथर्ववेद-१४.२.२६
19. अग्रा उषसः प्रति जागरासि। अथर्ववेद-१४.२.३१
20. नारि पितृभ्यश्च नमस्कुरु। अथर्व-१४.२.२०
21. सोमो हि राजा सुभगां कृणोति। अथर्ववेद-३.३६.३
22. प्र णो देवी सरस्वती, वाजेभिर्वाजिनीवती। धीनामवित्र्यवतु॥
    ऋग्वेद-६.६१.४
23. गार्गीवाचक्नवी, बडवा प्रातिथेयी, सुलभा मैत्रेयी, कहोलं कौषीतक..।
    आश्वलायन गृह्यसूत्र-३.४.४ तथा शङ्खायन गृह्यसूत्र-४.१०
24. स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ। ऋग्वेद-८.३३.१९
25. वैदिक कालीन विदुषियाँ, पृ-१३८
26. बृहदारण्यकोपनिषद्-३.६.१ तथा ३.८.१-२
27. ब्राह्मणा भगवन्तस्तदेव...वाचक्नव्युपरराम। बृहदारण्यकोपनिषद्-३.८.१२
28. वेदों में नारी, पृष्ठ-६४
29. विषूच्येतु कृन्तती, पिनाकमिव बिभ्रती। अथर्ववेद-१.२७.२
30. प्रेतं पादौ प्रस्फुरतं, वहतं पृणतो गृहान्।
    इन्द्राण्येतु प्रथमाऽजीताऽमुषिता पुरः। अथर्ववेद-१.२७.४
    विष्वक् पुनर्भुवा मनोऽसमृद्धा अघायवः। अथर्ववेद-१.२७.२